।।श्रीराधा।।

नानाजी जन्मोत्सव २०२३

जमुनाजल खेलत जुगलकिसोर ।
सुरत विवस सब राति जगे दोउ, कोऊ न बिछुरत भोर ।।
पानि कमलमुख जलभरि तकि तकि, छिरकत वोट हिलोर ।
नैंननि नीर लगत नहि सकुचत, अरुझत जोवन जोर ।।
बुड़की लै उछरति एकहि-सँग, अंग सहत झकझोर ।
तरत न डरत प्रवाह पग पेलत, खेलत मिलि दुरि चोर ।।
करतल ताल बजावत नाचत, गावत मंदर घोर ।
व्यासदासकी स्वामिनि पियहि, मिलि दै उरज अकोर ।।

भावार्थ श्रीयुगल जमुनाजल में नृत्य केलि कर रहे हैं। अत्यंत प्रेम में रंगे दोनों रात्रि भर जगे ही रहे हैं और सुबह होने पर विलग नहीं होना चाहते। जल में एक-दूसरे का मुख देख-देखकर हर्षित हो रहे हैं। हल को हाथों से हिला-हिला कर छींटे दे रहे हैं। नैनों में जब जल चला जाता है तब भी वे रुकते नहीं और एक दूसरे को हृदय लगाते हैं। श्रीकालिंदी के प्रवाह में निर्भय होकर छिप-छिपकर चोर का खेल करते हैं। करतल और ताल बजा-बजाकर वे कभी मंद एवं कभी तीव्र गति से नृत्य करते हैं। व्यासजी की स्वामिनी श्रीराधा प्रेम में भरकर श्रीकृष्ण को हृदय से लगाती हैं।

आज की संध्या बेला में, आप सब का स्वागत करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस कार्यक्रम के आयोजन के पीछे एक रोचक गाथा है जो मैं आप सब के समक्ष प्रस्तुत करने जा रही हूँ। जैसा कि आप सब को ज्ञात है कि मई २०२१ - मई २०२२ का वर्ष डैडी का सौवाँ वर्ष था, जिसके लिये हम लोगों ने यह योजना बनाई थी कि प्रत्येक सप्ताहन्त में एक परिवार जो विभिन्न गोष्ठियों के सदस्य हैं, डैडी के इस गृह के वातावरण का अनुभव करें और यहाँ के दैनिक कार्यक्रम में भाग लें। किन्तु भगवान् को कुछ और ही मंज़ूर था और हमारी यह योजना कोविड विभिक्षिका में स्वाहा हो गई। परन्तु १७ मई २०२२ के आने के पूर्व यह आभास होने लगा कि एक दिवसीय समारोह का आयोजन संभव हो जायेगा, और ऐसा हुआ भी। इस

आयोजन में जो २५-३० बच्चे ५ वर्ष की आयु से लेकर १३ वर्ष की आयु के आये थे, उन्होंने परस्पर में क्रीड़ा रत रहते हुए व साधन करते हुए, जैसे अग्निहोत्र इत्यादि से इतना सुख व आनन्द का अनुभव किया कि वे देखते ही बनता था। समस्त गृह उनकी उल्लास भरी किल्कारियों से गुँजायमान हो गया व उनके हँसते हुए चेहरों से प्रकाशित हो गया। १७ मई २०२२ की रात्रि में इन बच्चों ने आपस में भावभीनी विदा ली।

एक विशेष बिन्दु इस स्थल पर उजागर करना आवश्यक लग रहा है। इन बच्चों के माता-पिता गीता गोष्ठियों से जुड़े हुए हैं व स्वयं अपने जीवन के सभी कर्तव्य पालन करते हुए साधनामय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अतएव अपनी सन्तान को भी इन्होंने यही शिक्षा दी है। डैडी का आजीवन प्रयास रहा कि समूचे परिवार ही गोष्ठियों में जुड़े। उनका मानना था कि एकल व्यक्ति अगर जुड़ेगा तो गृह में तनाव का वातावरण बन सकता है। अतएव मनुहार कर करके वे परिवार के समस्त सदस्यों को जोड़ने का प्रयास करते थे। बच्चों के प्रति डैडी का विशेष प्रेम था। बच्चों को गीता की शिक्षा ग्रहण हो उसके लिये उनके स्तर पर कहानियों अथवा दृष्टांतों से समझाने का प्रयास करते थे। घर-घर में पद गायन व कीर्तन हो सके इसके लिये डैडी ने शास्त्रीय संगीत पर आधारित सरल धुनें बनाईं। उनके उस प्रेमिल प्रयास का ही प्रभाव है कि परिवारों में प्रत्येक सदस्य गीतोक्त जीवनशैली अपनाने का प्रयास कर रहा है। (गीतोक्त जीवनशैली का वर्णन आनन्द यात्रा पुस्तक के भाग १ व २ में विस्तृत रूप से दिया गया है।) यह बच्चे साधन करते हुए, जिसमें गीता श्लोक कंठस्थ करना भी सम्मिलित है, अपने विद्यालयों में उच्च अंक प्राप्त कर रहे हैं व विशिष्ट पदों पर आसीन हैं। सब ललित कलाओं में भी अपना स्थान बनाये हुये हैं। जैसे राधा, जो राधानिकुँज में पली बड़ी हैं उन्होंने दसवीं की परीक्षा में ९६ प्रतिशत अंक प्राप्त किये। साथ ही वे (कथक) व गौरी (भारतनाट्यम) नृत्य में अपना स्थान बना रही हैं। किशोरी पाँच वर्ष की आयु से गायन व तबला वादन कर रही हैं, तथा नौ वर्ष की आयु से कहानी लेखन व सीतार वादन की शिक्षा प्राप्त कर रहीं हैं। आदी ने बाँसुरी वादन में विशेष स्थान प्राप्त किया है। कृदय, वासु तथा ईशान बहुत कलात्मक ढंग से तबला वादन करते हैं तथा हुनर व हितार्थ तबले की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। कृष्णा मेद्दिरत्ता अपने विद्यालय में Head Boy के पद पर आसीन हैं। गायन व हारमोनियम वादन में तो अधिकांश बच्चे अपना स्थान बनाये हुये हैं। कृष्णा

सिब्बल ने तीन वर्ष की आयु में राधानिकुँज में गाये जाने वाले कीर्तन का नेतृत्व करा था। इस प्रकार अनेकों गोष्ठियों के बालक-बालिकायें विभिन्न स्तरों पर सफलता प्राप्त करते हुए साधनमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

उन्हीं में से एक बच्चे ने अपनी माँ के समक्ष यह तर्क रखा कि यदि नानाजी की सौवीं वर्षगांठ मनाई जा सकती है तो एक-सौ-एक वर्षगांठ भी मनाई जा सकती है। जब उसकी माँ ने मुझे इस तथ्य से अवगत कराया तो बच्चे की भोली-भाली बात का मेरे मन पर प्रभाव पड़ा और सहज रूप से वर्षगांठ मनाने का निर्णय लिया। डैडी की चौथी पीढ़ी की फुलवारी मेरठ आने में इतनी प्रसन्न होती है, तो प्रतिवर्ष १७ मई के कार्यक्रम का आयोजन किया जाए। आज हम सब पुन: एकत्रित हुए हैं तथा यह आशा करते हैं कि उसी सुख व आनन्द का सब अनुभव करें।

जैसा कि आप सब को ज्ञात है कि श्रीमद्भगवद्गीता के प्रति डैडी का पूर्ण समर्पण भी था तथा वह उनको अत्यधिक प्रिय भी थीं। उनका गीता अध्ययन गीता-प्रेस द्वारा प्रकाशित टीका - 'तत्वविवेचनी' से आरंभ हुआ था, यह टीका प्रश्न व उत्तर रूप में लिखि गई है। परन्तु वे प्रश्न भी क्लिष्ठ हैं तथा उनके उत्तर भी क्लिष्ठ हैं। सोलह से सत्रह बार डैडी ने इस टीका का अध्ययन किया किंतु संतोषजनक सफलता न मिल सकी। हताश मन से उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् व संतों से अश्रुपूर्ण नेत्रों से व रुँधे हुए कंठ से विनती करी, जिसके उपरान्त गीता जी के अर्थ उनके समक्ष प्रकट होने लगे। इससे उलस्सित हो कर उन्होंने तत्वविवेचनी एवं विभिन्न टीकाओं का अध्ययन किया, किंतु इस तथ्य पर पहुँचे कि अधिकाँश टीकाएँ जन साधारण की समझ से फिर भी परे की बात हैं। अत: एक सरल टीका लिखने का उन्होंने निर्णय लिया। भगवद प्रेरणा व संत कृपा से एक सरल टीका उनके द्वारा लिखि गई जो हम सब के समक्ष "जीवन-विज्ञान" के रूप में प्रस्तुत हुई, और आज हम सब के जीवन में अपनी अमिट छाप छोड़ चुकी है। कालान्तर में "जीवन-विज्ञान" का ही अनुवाद "Gita for All" के रूप में, उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया। गीताजी का अध्ययन निरन्तर चलता रहा तथा उनकी छोटी-बड़ी गोष्ठियाँ भी आरम्भ हो गईं। सम्भवतः १९७५ से १९७८ के बीच में बाबा ने यह घोषित किया कि डैडी उनके दलाल हैं। डैडी का अत्यन्त कोमल हृदय तो था ही और अब गीता के ज्ञान से उनका जीवन अनुरंजित हो चुका था। अत: अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक

व्यक्ति के कष्ट निवारण में वे तत्पर हो जाते थे तथा गीतोक्त जीवन प्रणाली का सुझाव अवश्य देते थे। आरम्भ में दुःखी व्यक्ति को कुछ ग्राह्य भी नहीं होता था किन्तु डैडी अपना धैर्य न खोते हुए उसको बारम्बार पूर्ण सौहार्द से समझाने का प्रयास करते थे। यह भगवान् व सन्तों की कृपा थी कि अधिकतर उनके सतत् प्रयासों व उनकी कोमल भावनाओं से प्रभावित होकर वह व्यक्ति समझने का पूर्ण प्रयास करता था। तथा अपने जीवन में उस शिक्षा को धारण भी करता था। यहाँ बैठे जिन व्यक्तियों ने यह अनुभव किया है, वे सब इस बात को अवश्य स्वीकार करेंगे। इस प्रकार लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों से डैडी यह प्रेमिल आग्रह अवश्य करते थे कि वे अपनी-अपनी गोष्ठियाँ आरम्भ करें। आज उसी प्रेरणा के फलस्वरूप देश-विदेश में अनेक गोष्ठियाँ फैली हुई हैं, तथा -"जीवन-विज्ञान" उनकी आधार ग्रंथ बनी हुई है। गीताजी का अध्ययन डैडी के जीवन में निरवधि रूप से चलता रहा तथा उसने एक गंभीर चिन्तन का रूप धारण कर लिया। आज का उत्सव उसी चिन्तन को प्रकाशित करने का छोटा सा प्रयास है।

एक समय की बात है, कि डैडी के मन में यह प्रश्न उठा कि प्रचलित मान्यता के अनुसार गीताजी के ३ विभाजन किये जाते हैं - प्रथम कर्मयोग षट्क, द्वितीय भक्तियोग व तृतीय ज्ञानयोग षट्क के रूप में कहे जाते हैं। श्रीभगवान के इस क्रम का क्या रहस्य है? कुशाग्र बुद्धि तो वे थे ही, और अब तो इस प्रश्न ने उनके मन को मथ डाला था। अत: बुद्धि व मन को श्रीभगवान् के चरणों में समर्पित करके भगवान् की शरण में जाना ही उन्होंने श्रेयस्कर समझा। श्रीभगवान् ने भी अपने हृदय के द्वार खोल दिये और इस तथ्य को सौहार्द पूर्ण रीति से प्रकाशित किया कि कर्म-भक्ति-ज्ञान षट्क का जो क्रम है, उसमें एक मधुराति-मधुर शृंखला गुम्फित है। जैसे-जैसे इस शृंखला का गम्भीर चिन्तन आरम्भ हुआ डैडी के मन में भगवान् के सौन्दर्य व उनका प्राणी मात्र के प्रति प्रेम का प्रकाश फैल गया।

लगभग इसी समय डैडी ने परम पूज्य बाबूजी के किसी recorded सत्संग में सुना कि बाबूजी ने गीता को 'रसग्रंथ' की उपाधि से सुशोभित किया है। उनका मन इस रहस्य को गीता जी में खोजने में लग गया। डैडी का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि भगवान के भाव, धाम, व लीला का प्रकाश अवश्य ही गीता जी के श्लोकों में, भगवान् की व संतों की कृपा से प्राप्त हो सकता है। यह प्रक्रिया उसी प्रकार हुई

जैसे एक सीपी में मोती बन्द होता है परन्तु खुलने पर दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार से गीता जी के श्लोकों में श्रीगोलोकधाम का प्राकट्य उनके लिये होने लगा। अपने दैनिक कर्तव्यों को करते हुए वे धाम के रस में प्रतिष्ठित रहते थे। उन्हें श्लोकों के मध्य वे लीलाएँ दिखती थीं जो आज के कार्यक्रम में गाये जाने वाले पदों के माध्यम से गायी जा रही हैं। इसी तथ्य को आज के श्रृंगार के माध्यम से प्रकट किया गया है, जो लीला स्थली में आप सब को दृष्टोगोचर हो रहा है। इसमें पीले, नीले व हरे वस्त्र क्रमश: कर्मयोग, भक्तियोग व ज्ञानयोग षट्क के परिचायक हैं और इनके मध्य में गोलोकधाम की झांकी सीप में मोती के समान विराजित है।

प्रथम डैडी के मन में दयामय प्रभु के भाव का प्राकट्य, दूसरे अध्याय के सोलवें श्लोक के रूप में हुआ। जो भगवान ने इस प्रकार प्रकाशित किया कि, असत् वस्तु के अस्तित्व का अभाव है व सत् वस्तु की सदैव विद्यमानता है। किंतु भगवान ने इसे तत्वज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा जाना बताया है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।२-१६।।

भगवान के हृदय की इस विशालता पर डैडी मुग्ध हो गये। जिस व्यक्ति ने गीता का अध्ययन करना आरम्भ किया है, उसके मन में भगवान् के प्रति कोई तीव्र झुकाव तो होगा नहीं। अत: उसके विश्वास को पोषित करने हेतु इसी तत्व का प्रकाश ज्ञानी पुरुषों के माध्यम से होना बताया है। तत्पश्चात् भगवान् स्थान-स्थान पर अपने को प्राणी मात्र का सुहृद बताते हुए अपने उस प्रेम का प्रकाश करते हैं, जिसके कारण वे जीव मात्र को प्रेरित करते हैं कि वह उनसे अपनी अन्तरंगता बढ़ाये, क्योंकि वह उनका ही सनातन अंश है तथा उस धाम में निवास करने का अधिकारी है, जो उनका परम धाम है। इन दोनों बातों को श्रीभगवान् ने पंद्रहवे अध्याय में व्यक्त किया है। साथ ही गीता जी में स्थान-स्थान पर प्राणी समुदाय को अर्जुन के माध्यम से अनुभव कराते हैं, कि प्रत्येक प्राणी उनको कितना प्रिय है। जीव प्रपंच के दलदल में पड़ कर उनको भूल गया है और दु:ख पर दु:ख झेल रहा है। जो उनको अर्थात् भगवान् को

बिल्कुल भी सहन नहीं है क्योंकि जीव उन्हीं का सनातन अंश है। इसी प्रेम के कारण भगवान् पंद्रहवे अध्याय के छठे श्लोक में कहते हैं कि जिसको सूर्य व चंद्रमा प्रकाशित नहीं कर सकते परन्तु उस धाम को उनकी कृपा अत्यन्त सहजता से प्राप्त करा देती है।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।१५-६।।

यह ध्यान रहे कि यहाँ भगवान् स्वयं अपने धाम की घोषणा कर रहे हैं कि जिससे भटके हुए जीव को उस प्रेम व आनन्द से पूरित धाम की एक झलक मिल जाये। उस धाम की अधिषठात्रि देवी श्रीराधा हैं, जिनका सम्पूर्ण अस्तित्व अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को सदैव सुख पहुँचाना है, उस धाम में अष्ट सखियाँ केवल एक ही कामना करती हैं कि कैसे वे श्रीयुगलसरकार - श्रीराधाकृष्ण को सुख पहुँचायें। सम्पूर्ण धाम ही इस प्रेमिल वातावरण से ओत-प्रोत है, इसी कारण श्रीभगवान् प्राणी मात्र को उनमें मिल जाने के लिये और सदैव सुखी होने के लिये प्रेरित करते रहते हैं।

इस प्रकार से अनेकों श्लोकों के चिन्तन से डैडी का हृदय उन गूढ़ रहस्यों के प्रकाश से आलोकित होने लगा। उनके चिन्तन की एक श्रृंखला ही आज के कार्यक्रम का आधार है, जो दूसरे अध्याय के श्लोक संख्या ४७ से आरम्भ होती है व उसकी परिसमाप्ति अट्ठाहरवें अध्याय के चौवनवे श्लोक में होती है। तो आइये उस श्रृंखला को अपने समक्ष विकसित होते हुए अनुभव करें।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।२-४७।।

श्रीमदभगवद्गीता के दूसरे अध्याय के इस सैंतालिसवें श्लोक में श्रीभगवान् कर्मयोग के विषय में प्राणीमात्र को अवगत कराते हैं कि मनुष्य अपना कर्तव्य निश्चित करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसको करे। कर्म के फल से किसी प्रकार की आशा न रखता हुआ केवल भगवदर्पण बुद्धि से कर्म करे। कर्मों के फलों

को मानसिक रूप से भगवान् पर इस प्रकार चढ़ा दे जैसे मन्दिर में भगवान् के श्रीविग्रह पर फूल चढ़ाये जाते हैं। ऐसा करने पर यह शरीर एक मन्दिर हो जायेगा और इसके द्वारा किये गये कर्म पूजा के फूल हो जायेंगे। श्रीभगवान् अपनी साहृदयता से जीव की कर्म परवशता को देखते हुए ऐसी प्रणाली अर्थात् कर्मयोग की शिक्षा का आरम्भ करते हुए आगे श्लोक संख्या पचास में कहते हैं -

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।२-५०।।

यदि जीव समबुद्धि से युक्त कर्तव्य कर्मों को करे अर्थात् - कर्म तथा फल की आसक्ति को छोड़ कर करे, तो पाप कर्म तो होते नहीं तथा पुण्य कर्म भुने हुये बीज के समान फल देनें में अयोग्य हो जाते हैं। यही कर्मों में कुशलता है और मनुष्य अपने जीवन के महान लक्ष्य की ओर अग्रसर हो जाता है। ऊपर कहे हुए भावों को अब गाये जाने वाले पद में कितने सुन्दर ढंग से बाबूजी ने इंगित किया है।

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूँ अब तेरे काज ।
पालन करने को आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज ॥
अन्तर में स्थित रहकर मेरी बागडोर पकड़े रहना।
निपट निरंकुश चञ्चल मन को सावधान करते रहना ।।
अन्तर्यामी को अन्तः स्थित देख सशङ्कित होवे मन ।
पाप-वासना उठते ही हो नाश लाज से वह जल-भुन ॥
जीवों का कलरव जो दिनभर सुनने में मेरे आवे ।
तेरा ही गुणगान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे ॥
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि ! तुझमें यह सारा संसार ।
इसी भावनासे अन्तर भर मिलूँ सभी से तुझे निहार ॥
प्रतिपल निज इन्द्रिय-समूह से जो कुछ भी आचार करूँ।
केवल तुझे रिझाने को, बस, तेरा ही व्यवहार करूँ ।।

(भावार्थ – हे प्रभु! आपके चरणों में प्रणाम करके, आपके द्वारा प्रदत्त कर्मों को करना आरम्भ करता हूँ । आपकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए आज मुझे नियुक्त किया गया है । हे नाथ! मेरे अन्त%करण में स्थित रहकर मेरे मन व बुद्धि की डोर पकड़े रहना, मेरे चंचल मन को

हर पल सावधान करते रहना जिससे वह उद्दण्डता न कर पावे । तुम अन्तर्यामी रूप से मेरे अन्त:करण में नित्य स्थित रहते हो, यह स्मरण कर मेरा मन पाप–कर्म करने में भयभीत हो जाता है और पाप–वासना उठते ही लज्जित होकर, उस वासना का ही समूल नाश हो जाता है । प्रत्येक जीव का स्वर जो दिन भर कार्य करते हुए मेरे कानों में आए, मुझे ऐसा ही अनुभव हो कि वह आपके ही गुणों का गान कर रहा है, जिस को सुनकर मेरा मन प्रसन्नता से भर जाए । हे हरि! आप ही इस संसार में सर्वत्र बसे हुए हैं और यह संसार आपका ही विस्तार है, इसी भावना से अपने मन को भरकर मैं सबसे व्यवहार करते समय आपको ही उनमें देख सकूँ । प्रत्येक पल में अपनी इन्द्रियों द्वारा जो भी आचरण करूँ, वह केवल आपको रिझाने के लिए बस आपके अनुकूल व्यवहार करूँ ।)

इस प्रणाली को डैडी ने अपने जीवन में कितना विकसित किया था, यह उस पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है। आजीवन वे ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाते थे। नित्य कर्मों से निवृत्त होकर अपनी माताजी के साथ चाय पीते थे, जो वे अधिकतर स्वयं बनाते थे। इसके पश्चात् दैनिक अग्निहोत्र होता था व प्रात: भ्रमण के लिये जाते थे। डैडी का जीवन जब परम पूज्य बाबूजी व परम पूज्य बाबा के दर्शनों से लाभान्वित हुआ तब अग्निहोत्र के तुरन्त बाद पद गायन, कीर्तन व स्वाध्याय गृह मन्दिर में होता था। जिसमें मम्मी एवं हम दोनों बहिनें सम्मिलित होतीं थी। कलेवे के पश्चात् वे कार्यालय जाते थे। गीतोक्त कुशलता से ही अपना जीविकोपार्जन का दायित्व निभाते थे। संध्या को भ्रमण पर जाते अथवा टेनिस खेलते और उसके उपरान्त परिवार के साथ समय व्यतीत करते थे। इसमें परिवार के साथ विचार-विमर्श करना तथा हम पुत्रियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यदि कोई कठिनाई होती तो उसका निवारण करते थे। संगीत का गायन, वादन अवश्य होता था। डैडी के जीवन का संगीत से घनिष्ठ सम्बन्ध था व संगीत की प्रतिभा उनमें जन्म-जात थी। वे लगभग १० वाद्य यंत्र बजाते थे, जिनमें उनका कौशल सुनते ही बनता था। शास्त्रीय संगीत से उनको प्रेम भी था तथा उसके वे मर्मज्ञ भी थे। उनका कंठ बड़ा मधुर था व उनके गायन में बड़ा माधुर्य था, उनका यह विशेष प्रयास रहता कि हम चारों मिलकर संगीत की लहरियों से जुड़ें। इसी के अन्तर्गत मम्मी तबला बजाती, मेरी बड़ी बहिन प्यानो बजाती व डैडी गिटार अथवा हारमोनियम पर संगत करते और हम सब मिलकर गाया करते थे। घर का वातावरण प्रफुल्लता से ओत-प्रोत हो जाता। मित्र सम्बन्धियों से मिलना जुलना भी होता था, किन्तु सन्तदर्शन के उपरान्त इसने

गोष्ठियों का ही रूप धारण कर लिया था। मुझे याद है कि कार्यकाल के अन्तिम दस वर्षों में जब वे सचिव पद पर आसीन थे तो देर रात तक भी मुख्यमंत्री जी के साथ यदा-कदा मीटिंग्स में व्यस्त रहते थे। परन्तु दूसरे दिन वे ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाते थे। उनके मुखमण्डल पर कभी कोई शिकन न रहती थी, न ही कोई थकान, क्योंकि वे प्रत्येक कर्म को भगवान् की उपासना ही बना रहे थे।

इस प्रकार कर्मयोग का अभ्यास करते करते जब भक्त का आत्मशोधन हो जाता है, तब उसका पदार्पण भक्ति मिश्रित कर्म योग की ओर भगवान् कराते हैं। परन्तु उससे पूर्व वह चौथे अध्याय के तीसरे श्लोक में यह घोषणा करते हैं कि उसी पुरातन योग का वर्णन वे अर्जुन के लिये कर रहे हैं। क्योंकि अर्जुन उनके भक्त व प्रिय सखा हैं।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।४-३।।

अर्जुन यदि सब जीवात्माओं का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं तो भगवान् का इस योग का वर्णन हम सब के लिये है। भक्त वह है जो भजन करता है, जो अपने को भगवान् के भाग में डाल देता है तथा जो किसी प्रकार भगवान् से विभक्त नहीं है। सखा शब्द से तात्पर्य है कि प्रत्येक जीवात्मा से भगवान की अन्तरंगता है तथा एकरूपता भी है। इसी शृंखला को आगे बढ़ाते हुए डैडी ने यह अनुभव किया कि चौथे अध्याय के ११वें श्लोक में श्रीभगवान् यह स्पष्ट करते हैं कि उनके ही मार्ग का अनुसरण इस लिये करना उपयुक्त है क्योंकि जो व्यक्ति भगवान को जिस भाव से भजता है, भगवान् भी उसे उसी प्रकार भजते हैं।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।४-११ । ।

मनुष्य चाहे जिस प्रकार का व्यवहार करे, वह सब व्यवहार वास्तव में भगवान् के प्रति ही होता है। या दूसरे शब्दों में वह व्यवहार वह अपने ही साथ करता है। दयामय प्रभु यहाँ हमें चेत भी करा रहे हैं जिससे राग व द्वेष के प्रपंच में हम फँस न जायें। इसी अध्याय के १९वे श्लोक में श्रीभगवान् प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं कि - जिसके सम्पूर्ण कार्य, कामना, - अर्थात् भोगों की इच्छा तथा संकल्प अर्थात् भोगों का निरन्तर विचार और स्मरण करने से रहित होते हैं, उसे ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।

क्योंकि उसने कामना व संकल्प का त्याग करके अपने कर्मों को ज्ञानाग्नि में भस्मीभूत कर दिया है।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।४-१९ । ।

इन तीनों श्लोकों में जो सावधानियों के साथ अपने कर्म करने की बात कही गई है, वह एसी ही है, जैसे एक-एक पग को सोच समझ कर रखा जाए। डैडी के जीवन में इन श्लोकों का समावेश सहज भाव से दृष्टिगोचर होता है। प्रशासनिक सेवा काल में उनके वरिष्ठ अधिकारी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा व उनपर विश्वास करते थे। अवश्य ही गीता के अध्ययन के पश्चात वह और भी दृढ़ता से इन श्लोकों के पालन में लग गए। तो आइये अब गाये जाने वाले पद से इसी भाव को पोषित होते हुए देखें। यहाँ पर राधाजी का रात्रि में प्रियतम के पास जाना व इस कारण पग ऐसे रखना कि नूपुरों की ध्वनि न हो, यह इसी बात का द्योतक है कि प्रत्येक कर्म गीतोक्त कुशलता से किया जाये तो प्रभु मिलन में विलम्ब नहीं होगा।

जैसे तेरे नूपुर न बाजहीं, प्यारी!
पग हौले हौले धर, पग हौले हौले धर । ।
जागत ब्रज कौ लोग नाहीं सुनायबे जोग
हा हा री हठीली नेंक, मेरौ कह्यौ कर । ।
जो लौं बन बीथिन माँहिं, सघन कुंज की परछाहिं
तो लौं मुख ढाँप चल, कुँवर रसिक बर ।
नंददास प्रभु प्यारी, छिनहूँ न होय न्यारी
सरद उजियारी जामें जैहें कहुँ रर । ।

(भावार्थ – हे प्यारी सखि! धीरे–धीरे चरण रख, जिससे तेरे नूपुर बजें नहीं । ब्रज के लोग अभी जग रहे हैं । उन्हें अपने नूपुरों का शब्द सुनाना उचित नहीं है । अरी हठीली! थोड़ी मेरी बात मान ले । मैं हा–हा खाती हूँ । सघन कुञ्जों की छाया से युक्त वन–बीथियाँ जब तक नहीं आ जातीं, तब तक तू मुख को ढककर रसिक शिरोमणि नन्दकिशोर के पास चल । नन्ददास जी कहते हैं – प्यारी श्रीराधे! प्रभु से क्षण भर के लिये विलग न रह । आज शरद ऋतु की उजियाली रात है, उस चाँदनी में तुम्हारा गोरा शरीर इस प्रकार मिल जायेगा कि किसी को तुम्हारा पता ही नहीं चलेगा ।)

पाँचवें अध्याय के २९वें श्लोक में भगवान् अपनी अन्तरँगता प्रदर्शित करते हुये

कहते हैं, कि मेरा भक्त मेरे को यज्ञों और तपों का भोगने वाला व सम्पूर्ण लोकों का ईश्वर और सब भूतों का स्वार्थ रहित प्रेमी जान कर शान्ति को प्राप्त होता है, और उसकी दृष्टि में केवल वासुदेव ही रह जाता है।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।५-२९ । ।

गीता में इस स्थल पर आते-आते भगवान् भक्त को अपरा भक्ति का आस्वादन कराते हैं अर्थात् भक्त के हृदय में कोई इच्छा होती भी है तो वह केवल और केवल भगवान पर ही निर्भर रहता है। भक्ति साधन भी है और साध्य भी है, अत: इसे एक विशिष्ठ स्थान प्राप्त है। साधन के रूप में भक्ति करने से, साधन काल में ही जीवन एक विलक्षण माधुर्य से भर जाता है। भक्ति में भगवान की इच्छा व प्रीति हर समय क्रियाशील रहती है। भक्त अपने अतिरिक्त सबको भगवान समझता है और अपने को भगवान का सेवक समझता है। भक्त शिरोमणि श्री तुलसी दास के शब्दों में -

“सीय राम मय सब जग जानि।करहुँ प्रणाम जोरी जुग पानी।।”

डैडी का हृदय अत्यन्त कोमल भावों का आगार था। उनके माता-पिता का प्रभाव उनके जीवन पर ऐसा था कि उसके कारण वे संवेदनशील, चरित्रवान, दृढ़निश्चयी, मधुर-भाषी व शीलवान थे। अत: जिस परिवेश में वे रहे सबसे उनको, प्रेमिल आदर अवश्य प्राप्त हुआ तथा उन्होंने भी सबके प्रति आदर से ओत-प्रोत सदाचार का व्यवहार किया। इसी भाव को बड़े सौन्दर्य पूर्ण रीति से इस पद में दर्शाया गया है।

सखि हौं स्याम रंग रँगी ।
देखि बिकाइ गई वा मूरति सूरति माँहि पगी । ।
संग हुतौ अपनो सपनौ सो सोइ रही रस खोई ।
जागेहु आगे दृष्टि परै सखि नेकु न न्यारौ होई । ।
एक जु मेरी अँखियनि में निस द्यौस रह्यौ करि भौन ।
गाइ चरावन जात सुन्यौ सखि सो धौं कन्हैया कौन । ।
कासौ कहौ कौन पतिआवै कौन करै बकवाद ।
कैसे कै कहि जात गदाधर गूँगे कौ गुड़ स्वाद । ।

(भावार्थ – सखी मैं तो श्याम के प्रेम रंग में रंग गई हूँ । उसकी छवि देखकर तो मैं उस पर बिक गई हूँ और उसकी सूरत में तो बिलकुल डूब गई हूँ । वह तो सपनों में भी मेरे संग रहता है और सोते हुए भी उसी के प्रेम रस में खोई रहती हूँ । जागने पर मेरी दृष्टि के आगे वही रहता है । सखी एक क्षण के लिए भी वह मुझसे दूर नहीं होता । एक यह श्यामसुन्दर है जो भवन में जब मैं रहती हूँ तो मेरी आँखों में नित्य धँसा रहता है । फिर सखी, जो गाय चराने जाता है – वो कन्हैया दूसरा कौन है ? अब किसकी बात पर विश्वास करूँ कि कौन सच कहता है और कौन बकवाद करता है । गदाधर जी कहते हैं कि इस प्रेम को कौन कहे, जैसे गूँगा गुड़ का स्वाद नहीं बता सकता ।)

छठे अध्याय के पहले श्लोक में यह कहा गया है कि जो व्यक्ति कर्म फल का त्याग कर देता है और अपने कर्तव्य कर्म को करता रहता है उसी को संन्यासी और योगी समझना चाहिये। केवल बाहर से ही कर्मों को त्याग कर देने वाला या अग्नि का उपयोग छोड़ देने वाला ही संन्यासी या योगी नहीं है। यही भक्ति मिश्रित कर्म योग का स्वरूप है।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।६-१ ।।

अब आगे इसी अध्याय के तीसवें श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि, जो योगी सब में भगवान् को ही देखता है और इस कारण प्रत्येक परिस्थिति में उसे एक भगवान् की ही लीला का दर्शन होता है, तो ऐसे साधक के लिये सब ओर भगवान् ही भगवान् अवस्थित रहते हैं। तथा ऐसा योगी भगवान् की दृष्टि से कभी ओझल नहीं होता है। इस स्थल पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् से ऐसे योगी की अन्तरंगता अब और भी बढ़ती जा रही है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।६-३०।।

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए और भक्ति मिश्रित कर्मयोग का स्वरूप बताते हुए भगवान कहते हैं -

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं सः योगी परमो मतः।।६-३२।।

जिस प्रकार सांख्य योगी की सर्वत्र ब्रह्म दृष्टि हो जाती है, उसी के समानान्तर भक्ति मिश्रित कर्मयोगी की दृष्टि में भी सब भूत प्राणियों में सम भाव हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि वह किसी को दुःखी देखता है तो उसके मन में ऐसी करुणा उत्पन्न होती है जैसे वह दुख स्वयं उसी पर पड़ा हो। जब तक दूसरे के दुःख का निवारण न कर ले, उसके मन को चैन नहीं पड़ता। इसी प्रकार दूसरे के सुख में वह वैसे ही सुखी होता है जैसे वह सुख उसी को प्राप्त हुआ हो। किन्तु एक विशेष बात यह है कि इन दोनों स्थितियों में वह असीम प्रफुल्लता का अनुभव करता रहता है। यह तथ्य बाबा के जीवन में दृष्टिगोचर होता है। परम पूज्य बाबूजी के महा-प्रयाण के उपरान्त जो भी बाबा के समक्ष अपना सुख-दुःख अथवा चिंता प्रकट करता था, उसको हल करने में वे वैसे ही तत्पर हो जाते थे जैसे कि वह उनका अपना ही सुख-दुःख हो। परन्तु स्वयं एक अनिर्वचनीय आनन्द की स्थिति में रहते थे। गाये जाने वाले पद में यही दर्शाया गया है -

राधिका आज आनन्द में डोले ।
साँवरे चंद गोबिंद के रस भरी, दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोलै । ।
पहिर तन नील पट कनक हारावली हाथ लै आरसी रूप को तोलै ।
कहत श्री भट्ट ब्रजनारि नागरि बनी कृष्ण के सील, की ग्रंथिका खोलै । ।

(भावार्थ – आज श्रीराधिका आनन्द में मग्न होकर विचरण कर रही हैं । श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र के रूप में डूबी हुई ऐसे मीठे शब्दों का उच्चारण कर रही है, मानो कोई कोकिला मधुर स्वर में बोल रही हो । नीली साड़ी पहनकर तथा हृदय पर स्वर्णमाला धारण कर वे अपने हाथों में दर्पण लिये हुए अपने सौन्दर्य को देख–देखकर मन–ही–मन उसका मूल्यांकन कर रही हैं । श्रीभट्ट जी कहते हैं कि चतुरा ब्रजाङ्गना श्रीराधाकी शोभा क्या ही सुन्दर बन पड़ी है और वे अपनी प्रसन्नता से श्रीकृष्ण के शील की गाँठ को खोल रही हैं (अर्थात् उनका मन अपने हाथ में

नहीं रह जाता) ।)

अब भगवान् छठे अध्याय के श्लोक संख्या ४७ में यह घोषणा करते हैं कि भक्ति मिश्रित कर्मयोग के साधन में लगा हुआ व्यक्ति उन्हें सर्वश्रेष्ठ मान्य है।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।६-४७।।

भगवद्प्राप्ति के लिये कोई सा भी साधन किया जाये उसमें भी अपने साधन के बल का आश्रय नहीं लेना चाहिये। भगवद्कृपा का आश्रय लेने पर क्षण मात्र में सिद्धि प्राप्त हो जाती है। डैडी के स्वभाव में सहजता, गहरी उतरी हुई थी और उसका आधार उनका भगवान् में दृढ़ विश्वास ही था। यहाँ भगवान् इस बात पर बल दे रहे हैं कि जिस श्रद्धा युक्त योगी ने अपना मन निरन्तर उनमें लगा रखा है वह उन्हें पाने के लिये चाहे कोई भी साधन करे तो भगवान् की दृष्टि में उससे बढ़कर और कोई साधक नहीं है। श्रीभगवान उस भक्त को कितना श्रेष्ठ मानते हैं, यह उसके मधुर स्वभाव से परिलक्षित होता है। उस भक्त की स्थिति गीताजी में कुछ ऐसी वर्णित है मानों वह साधक उनकी नौका में बैठा हुआ सुगमता पूर्वक विहार कर रहा हो। उसके जीवन के सभी कर्म सहज व स्वाभाविक हो जाते हैं।

कुंजन की बीथी सुखदाई ।
उड़ि–उड़ि परयौ पराग अवनि पर फूली लता चहूँ दिसि छाई । ।
मंद–मंद गति सों पिय प्यारी आवत छबि पावत अधिकाई ।
निरखत–निरखत बन की सोभा कालिंदी तट पहुँचे जाई । ।
मणि गन जटित नाव अति सुंदर मधि मण्डल फुलवारि सुहाई ।
तिहि मधि बैठे जाइ लड़ैते कर्णधार खेवत मन भाई । ।
कंचन मनि गन जटित फूल विवि लता झूमि जल सों परसाई ।
फूले कमल अमल नाना रंग गुंजत भ्रमरन अति छबि छाई । ।
श्री जमुना तट मानसरोवर मधि संगम तहाँ नाव लगाई ।
उतरे जल बिहार कों जै श्री कमलनैन छबि पर बलि जाई । ।

(भावार्थ – कुञ्ज की गलियाँ अत्यन्त सुखदाई हैं । पुष्पों से पराग उड़–उड़कर धरती पर गिर रहा है, चारों ओर लताओं पर पुष्प छा रहे हैं । कुञ्जों की इन वीथियों से होते हुए श्रीप्रिया–

प्रियतम मंद–मंद गति से चलते हुए आ रहे हैं । श्रीयुगल छवि आज बहुत अधिक सौन्दर्य लिए हुए हैं । वन की शोभा निरखते हुए वे कालिंदी (यमुना) तट पर पहुँच जाते हैं । यमुनाजी में मणियों से जड़ी हुई अति सुन्दर नौका है । इस नौका के बीच में बहुत सुन्दर फुलवारी (फूलों का बगीचा) शोभित है। इस बगीचे के बीच में श्रीयुगल बैठ जाते हैं । नाव खेने वाले श्रीयुगल की रुचि अनुसार नाव चला रहे हैं। श्रीयुगल स्वर्ण व मणियों तथा पुष्पों से सजी सेज पर विराजित हैं और नौका से लताएँ झूम रही हैं तथा जल को स्पर्श कर रही हैं। यमुनाजी में अनेक रंगों के कमल खिल रहे हैं जिन पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। यह छवि बहुत मनोहर है। श्री यमुना तट से नाव चलकर म/य में आती है जहाँ एक सुन्दर मानसरोवर (कुण्ड) है, उसी कुण्ड के तट पर नाव लगा दी जाती है। यहाँ श्रीयुगल जल–विहार के लिए उतर जाते हैं। श्री कमल नैन जी श्रीयुगल की छवि पर बलिहारी जा रहे हैं ।)

श्रीभगवान् से उस भक्त की अन्तरंगता और बढ़ जाती है। सातवें अध्याय के पहले व दूसरे श्लोक में ऐसे भक्त की स्थिति बताते हुए श्रीभगवान कहते हैं ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।।७-१।।
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।७-२।।

इन दोनों श्लोकों में प्रथमत: भगवान उन गुणों का वर्णन करते हैं जिनसे विभूषित व्यक्ति उनको जानने का अधिकारी बनता है। जिस व्यक्ति को सब सुखों की प्राप्ति के लिये भगवान् से ही आशा लगी रहती है और उसमें वह संसार की किसी वस्तु की भागिदारी सहन नहीं कर सकता है, ऐसे भगवत्-प्रेमी को इस श्लोक में 'मय्यासक्तमन:' कहा गया है। अपने उद्धार के लिये साधन में लगने पर भी भगवान् के ही आश्रय पर अटूट विश्वास रखने वाले भगवत् परायण व्यक्ति को 'मदाश्रय' कहा गया है। भगवान् के आश्रय पर विश्वास रखते हुये भी जो व्यक्ति साधन में दत्त-चित्त लगा हुआ है, ऐसे योग युक्त व्यक्ति को 'योग-युज्न' कहा गया है। इस प्रकार के गुणों से जो व्यक्ति विभूषित है वह भगवान् को तत्व से जानने का अधिकारी होता है।

सातवें अध्याय के दूसरे श्लोक में भगवान कहते हैं कि ज्ञान और विज्ञान अर्थात् - प्रकृति के सहित परमात्मा के रहस्य को जान लेने के बाद फिर कुछ जानना शेष

नहीं रहता, क्योंकि फिर सांसारिक प्रपंच का कोई प्रभाव मनुष्य पर नहीं हो सकता। सब व्यवहार भगवान् के प्रति होने पर ज्ञान की प्राप्ति भगवान् स्वयं कराते हैं। उसमें एक अद्भुत त्वरा जागृत हो जाती है कि वह भगवान् के गीतोक्त संदेश को जिस प्रकार संभव हो सद् पात्रों तक पहुँचाने का प्रयास करे। उसकी सब आसक्तियाँ भगवान् में ही विलीन हो जाती है। श्रीभगवान् की यह प्रीति पूरित करुणा को देख कर भक्त अपनी आसक्ति का केन्द्र भगवान को ही बना देता है, चहुँ दिशाओं की उसकी आसक्तियाँ एक भगवान् में ही समा जाती हैं और वह गा उठता है -

प्रीतम तू मोहि प्रान ते प्यारो ।
तुम मेरी पुतरिन में बसत नित, मैं तव अंखियन तारो । ।
तुम मेरे मन रोम रोम तन फूल सुगन्ध न न्यारो,
ज्यों फूल सुगन्ध न न्यारो । ।
तुम्हरे मैं वनमाल कंठ की, तुम नयनन कजरा कारो ।
मैं मुख चन्द्र में हास्य चन्द्रिका, सिन्धु लहरि नहिं न्यारो,
ज्यों सिन्धु लहरि नहिं न्यारो । ।
मैं तुम्हरे वनमाल पुष्प मधि, धागा होत न न्यारो,
ज्यों धागा होत न न्यारो । ।
वंशी सुधाअनुराग राग मैं, पद्म गन्ध नहिं न्यारो,
हौं मुख पद्म गन्ध नहिं न्यारो । ।
तुम रुचिकर श्याम तमाल तरुण, मैं विलुलित वेलि न न्यारो
तव मुख सुख अरविन्द सदन, मैं नयन 'अली' मतवारो,
मेरे नयन अली मतवारो । । प्रीतम तू । ।

(भावार्थ – प्रियतम तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हो । तुम मेरे नैनों में नित्य बसे रहते हो और मैं तुम्हारी आँखों का तारा हूँ । तुम मेरे मन व तन के रोम–रोम में समाये रहते हो जैसे फूल की सुगन्ध फूल से अलग नहीं होती। मैं तुम्हारे कंठ की वनमाला हूँ और तुम मेरे नैनों में कजरा बनकर समाये रहते हो । तुम्हारे मुख चंद्र की हास्य छटा में मैं इस प्रकार समाये रहती हूँ जैसे सागर में लहर । वनमाला के प्रत्येक पुष्प में पिरोए जाने वाले धागे की भाँति मैं तुमसे कभी पृथक नहीं होती । तुम्हारी वंशी से नि:सृत रागलहरी में प्रेम भरा है जैसे कमल की सुगन्ध उससे अलग नहीं

होती । तुम श्याम तमाल वृक्ष और मैं उस पर लहराती पुष्पों की बेल । तुम्हारा मुख सुन्दर कमलों का सरोवर है और मैं उस पर मँडराती भौंरे के समान हूँ ।)

नवें अध्याय के पहले श्लोक में भगवान् यह आश्वासन देते हैं कि उनकी कृपा से यह गूढ़ विषय सरलता से भक्त को समझ में आ जाता है। किन्तु दो गुण उस व्यक्ति में होने चाहिये।

प्रथम - उसका हृदय भगवान की भक्ति से भावित हो, तथा भगवान् में उसकी दोष बुद्धि ना हो। ऐसा होने पर इस ज्ञान-विज्ञान को जानकर मनुष्य सांसारिक दुखों को पार कर अनन्त आनन्द को प्राप्त कर लेता है। डैडी के जीवन से भी यह बात दृष्टिगोचर होती कि भीषण से भीषण परिस्थिति भी उनके भगवद् विश्वास को हिला नहीं पाती। तथा वे स्वयं भी सदैव प्रसन्न रहते व अपने चारों ओर भी प्रसन्नते बिखेरते।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।९-१।।

इसी अध्याय के २२वें श्लोक में तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीभगवान् ने अपने हृदय के द्वार ऐसे भक्त के लिये खोल ही दिये हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।९-२२।।

इसमें भगवान् कहते हैं कि जो भक्त उनका अनन्य चिन्तन करते हैं अर्थात् सब को भगवान् का रूप समझते हैं, सब कार्यों को भगवान् के ही कार्य समझते हैं, तथा अपने साथ हुए सब प्रकार के व्यवहारों को भगवान का विधान समझते हैं, और इसी में अपना कल्याण समझते हैं, उनका योग-क्षेम भगवान् स्वयं वहन करते हैं। अप्राप्त की प्राप्ति को योग कहते हैं तथा प्राप्त की रक्षा को क्षेम कहते हैं। इन दोनों का वहन भगवान् स्वयं करते हैं। भगवान् की इस दयालुता पर कौन नहीं रीझ जायेगा। डैडी मम्मी के गृहस्थ का योगक्षेम भगवान् वहन करते थे, यह इसी से सिद्ध हो जाता है कि सीमित आय में वे सब के लिये कितना कुछ कर लेते थे। घर सदैव सम्बन्धियों व मित्रों से भरा रहता था और सब कुछ सुचारु रूप से हो जाता था।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।९-२८।।

ऐसा भक्त गृहस्थ के सारे कर्म करते हुए भी संन्यास योग से युक्त ही समझा जाता है। वह अपने कर्म करते हुए ही भगवान् को प्राप्त कर लेता है। ऐसे ही भक्त को गाये जाने वाले पद में बड़भागी कहा गया है।

तू है सखी बड़भाग भरी नंदलाल तेरे घर आवत हैं ।
निज कर गूँथि सुमन के गजरे हरषि तोहि पहरावत है । ।
तू अपनो सिंगार करति जब दरपन तोहि दिखावत है ।
आनंदकंद चंद मुख तेरो निरखि निरखि सुख पावत है । ।
जाके गुन सब जगत बखानत सो तेरो गुन गावत है ।
नारायन बिन दाम आजकल तेरेहि हाथ बिकावत है । ।

(भावार्थ – प्यारी सखी राधातू बहुत भाग्यशाली है जो नन्दलाल स्वयं तेरे पास तेरे भवन में आते हैं । अपने हाथों से गूँथकर फूलों के गजरे बनाते हैं और फिर अत्यन्त हर्षित होकर तुझे पहनाते हैं । जब तू अपना श्रृंगार करती है तब दर्पण लेकर वे उसमें तुझे तेरा मुख कमल दिखाते हैं और स्वयं भी तेरे चन्द्रमा सरीखे मुख को निरख–निरखकर आनंद कंद श्यामसुन्दर परम सुख पाते हैं । जिन श्रीकृष्ण के गुणों का गान सारा जगत करता है वे तेरे गुणों का गान करते हैं । श्री नारायण स्वामी कहते हैं कि श्यामसुन्दर तेरे हाथ बिना मोल के बिक गए हैं ।)

ऐसे भक्तों का चित्त निरंतर भगवान में ही लगा रहता है और उनके शरीर तथा प्राणों की सब क्रियायें केवल भगवान के लिए ही होती हैं। उनकी परस्पर में चर्चा भी भगवान की भक्ति व लीलाओं से परिपूर्ण होती है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।१०-९।।

ऐसा होने पर वह भक्त उनको निरंतर अपने ध्यान में रखते हुए भगवान का भजन ही करता है और भगवान अपने भक्त की इस प्रीति पर बलिहार जाते हुए उसको तत्व ज्ञान से आलोकित कर देते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।१०-१०।।

साधारण तौर पर यह समझा जाता है कि ज्ञान की प्राप्ति घोर अध्ययन, शोधन इत्यादि चेष्टाओं से होती है। परन्तु यहाँ भगवान के तत्व ज्ञान की बात हो रही है। भगवान स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं। उनका तत्वज्ञान तभी होता है जब चित्त निरंतर उन्हीं में लगा रहे और उनका भजन प्रेम पूर्वक किया जाए। इसमें दैनिक जीवन की सब क्रियाएं भी उनका स्मरण करते हुए और समर्पण भाव से होंगी तो वे भजन की ही श्रेणी में आएँगी। इसलिए भजन के इन दोनों अंगों का पालन करने से ही भजन पूर्ण होता है।

सांसारिक प्रपंच को वास्तविक समझना ही अज्ञान है और अब १०वें अध्याय के श्लोक संख्या ११ में भगवान कहते हैं उन भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अंतःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ अज्ञान से उत्पन्न हुए उस अंधकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान रूप दीपक द्वारा नष्ट करता हूँ। सेवानिवृत्ति से पूर्व ही डैडी-मम्मी के गृह में चर्चा का विषय मुख्यत: भगवान् ही हो गये थे। उनकी प्रत्येक क्रिया भजन ही बन गई थी।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।१०-११।।

जो व्यक्ति मन का कपट त्याग कर भगवान में अपने चित्त को लगाता है तो चाहे उसके शरीर द्वारा संसार के सब कर्तव्य भी होते रहें, परंतु भगवान की कृपा उसकी ओर बरबस ही खिंच जाती है। ऐसे भक्तों के हृदय में वे अपनी सब लीलाओं का प्रकाश कर देते हैं एवं अबाध रूप से उसके हृदय में अपने लीलामय धाम को अवतरित कर देते हैं। भक्त यह देखकर मुग्ध हो जाता है कि जिसको वह सांसारिक प्रपंच समझ रहा था वह तो केवल उन रासेश्वर व रासेश्वरी का चिद् विलास था, उस लीलामय धाम का प्रतिबिंब था। भक्तों की दृष्टि से गोलोकाधिपति पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का यह सब नित्य लीला विलास है, और अनादि काल से अनन्त काल तक यह नित्य चलता रहता है।कभी कभी भक्तों पर कृपा करके वे अपने नित्य धाम और नित्य सखी सहचरियों के साथ, लीला धाम में प्रकट हो कर लीला करते हैं और भक्तों के स्मरण-चिन्तन तथा आनन्द मंगल की सामग्री प्रकट करके अन्तर्धान हो जाते हैं। भक्त चिन्तन की

स्थिति में रहे अथवा संसार में व्यवहार करे दोनों ही क्षेत्र में उसको केवल भगवान् की लीला के ही दिग्दर्शन होते हैं। डैडी के महाप्रयाण से कुछ वर्ष पूर्व ही यह प्रतीत होने लगा था कि वे निरन्तर अपने इष्ट के चिन्तन में लीन रहते व बाबा की दलाली के अन्तर्गत उनके शरीर के माध्यम से इस धरातल पर सहजतापूर्वक सब व्यवहार होता रहता। उनका हृदय श्रीप्रिया-प्रियतम की रास-नृत्य स्थलि ही बन गया था जो उनकी प्रफुल्लता व उत्साह पूरित चेष्टाओं से स्पष्ट दिखता।

बन नाचे नट नीको आली नन्द को किशोर ।
राधे जगत नचायो तेरी ऽ भौं की मरोर । ।
ब्रज के किशोर तौ पै डारूँ तृण तोर प्यारो ।
सुनी मुरली की धुन मेरो मन भयो मोर । ।
कमल कली को ऽ रँग भानु की लली को स्यामा ।
मुख चंद्रहुँ सो नीको मेरे नयना हैं चकोर । ।
ग्रीवा की लटक हरे नयन की मटक ।
करे चित्त पै झपट पीरे पटका को छोर । ।
मुख की भुराई भाल बिंदिया सजाई तेरी ।
मानो छीर सिन्धु माहीं बाल रवि उग्यो भोर । ।
नयनन बसाय तोहैं राखूँगी छिपाये प्यारो ।
कहूँ भाग न जाय मेरी मुँदरी को चोर । ।
मन स्याम रँग दिन रैन राखो सँग प्यारी ।
कहाँ जायेगी पतँग तेरे हाथ में है डोर । ।

(भावार्थ – हे राधे, देखो! नटनागर नन्दकिशोर श्रीकृष्ण वन में अति सुन्दर नृत्य कर रहे हैं। ऐसा क्यों न हो! जब आपकी भृकुटि के विलास से समस्त जगत नाचता है – तो आपके प्रियतम श्रीकृष्ण नृत्य में प्रवृत्त हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? श्रीराधाकहती हैं, हे बृजकिशोर! मैं आप पर तृण तोड़कर अपना सर्वस्व बलिहार देती हूँ (समर्पण कर देती हूँ) । आपकी मुरली की टेर सुनकर तो मेरा मन मोर के समान नृत्य करने लगता है । श्रीकृष्ण कहते हैं हे वृषभानु की पुत्री राधे! आपका रंग कमल कली के समान अरूणाई लिये हुए है । आपका मुख चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर है और मेरे नेत्र चकोर पक्षी के समान उनको निहारते–निहारते अघाते नहीं हैं । श्रीराधाकहती हैं, हे प्यारे आपका ग्रीवा (गर्दन) को एक ओर झुका देना एवं नयनों का मटकाना मेरे मन को हर लेता है,

उससे मेरे मन का भटकाव रूक जाता है (अर्थात् मेरा मन आपकी इस अदा को निहारने में टिक जाता है) । आपके पीले पटके की छोर इतनी सुंदर है कि उसका दर्शन मेरे मन में (बिजली के समान) कौंध जाता है । श्रीकृष्ण कहते हैं , हे राधे! आपके मुख पर जो पीलेपन की झांकी है, उस पर जो आपने अपने सुंदर माथे के मध्य में लाल बिंदी सजाई है – ऐसे लगता है जैसे दूध का सागर हो, और उसमें सुबह का लाल–लाल सूरज उग रहा हो । श्रीराधाकहती हैं, हे प्यारे! आपको नैनों में बसाकर, छिपाकर रखूँगी । (डर लगता है कि) मेरी अँगूठी के चोर (आप) कहीं भाग न जाएं (यहाँ यह एक अन्य लीला की ओर संकेत है जिसमें श्रीकृष्ण राधाजी की अँगूठी चुराकर ले जाते हैं) श्रीकृष्ण कहते हैं , हे राधे! मेरा मन तो निरंतर आपके रंग में रंगा हुआ है, मुझे आप कृपा करके दिन–रात अपने पास ही रखिएगा । वैसे भी ये पतंग (अर्थात् मैं) कहाँ जायेगी अब मेरी डोर आपके ही हाथ में है ।)

सोनजुही की बनी पगिया अरू चमेली को गुच्छ रहयौ झुकि न्यारो ।
द्वै दल फूल कदंब के कुंडल सेवती जामाहु घूम घुमारो । ।
नौ तुलसी पटुका घनस्याम गुलाब इजार चमेली को न्यारो ।
फूलन आज विचित्र बन्यौ देखो कैसो सिंगारयो है प्यारी ने प्यारो । ।

(और इधर देखो! राधाप्यारी ने अद्भुत पुष्प–रचना के द्वारा प्यारे श्रीकृष्ण चन्द्र का कैसा श्रृंगार किया है । सोनजुही पुष्पों की तो पगड़ी बनी हुई है, जिसमें चमेली का एक गुच्छा निराली अदा से लटक रहा है । कदम्ब पुष्पों का खूब घेरदार जामा है । नीलसुन्दर की विविध रंगवाली चादर की छवि और भी निराली है, जिसमें नाना वर्णों के नव तुलसीदल, विभिन्न प्रकार के गुलाब, गेंदा और चमेली के पुष्पों का उपयोग किया गया है ।)

नाचत बलभद्र वीर संग लिये युवती भीर ।
रास रच्यौ दिव्य तीर तनिया कलिन्दकी । ।
नाच उठी यमुन लहर चन्द चाँदनी को पहर ।
पीत पटि लहर–लहर नाची नन्द–नन्द की । ।
नचे बाल तालन पै श्रम बिन्दु भालन पै ।
सजी कमल मालन पै अवलि अलि वृन्द की । ।
राधारंग राच रही पलक खोल जाँच रही ।
नैनन में नाच रही मूरति गोविन्द की । ।

(बलराम और श्रीकृष्ण युवतियों की भीड़ को लेकर नृत्य कर रहे हैं । पीताम्बर धारण किये हुए भगवान श्रीकृष्ण यमुनाजी के दिब्य तट पर रास कर रहे हैं । यमुना की लहरें भी नृत्य कर रही

हैं तथा उस समय सभी ओर चन्द्रमा की चाँदनी फैली हुई है । नृत्य करते हुए नन्द के पुत्र (श्रीकृष्ण) का पीला पटका भी हिल रहा है । सभी ब्रजबालाऐं संगीत की तान पर नृत्य कर रही हैं । जिससे उनके मस्तक पर श्रम बिंदु झलक रहे हैं । उस स्थान पर समस्त सखी मण्डल के वक्ष%स्थल पर कमलों की मालाएं सजी हुई हैं । राधारानी इस रचे हुए रंग को पलक खोलकर निहार रही हैं । उनकी आँखों में गोविन्द की मूर्ति नृत्य करती हुई प्रतीत हो रही है ।)

सारी सँवारी है सोनजुही अरू जूही की तापै लगाई किनारी ।
पंकज के दल को लहँगा अंगिया गुलबाँस की सोभित न्यारी । ।
चम्पा को हार हमेल गुलाब को मौर की बेंदी दे भाल सँवारी । ।
फूलन आज बिचित्र बन्यो देखो कैसी सिंगारी है प्यारे ने प्यारी । ।

(भावार्थ – देखो! प्यारे श्रीकृष्ण ने अद्भुत ढंग से सजाकर प्रियाजी का आज कैसा श्रृंगार किया है! सोनजुही पुष्पों की साड़ी सजायी है, जिसमें जूही की किनारी लगी हुई है । कमल पुष्प दलों से लहँगा बनाया है और गुलबाँस की कञ्चुकी (चोली) अपनी निराली ही छटा दिखा रही है । चम्पा के पुष्पों का हार बनाया है और गुलाब का हमेल है तथा ललाट पर मोलगिसरी के फूल की बेदी शोभा दे रही है ।)

तालन पै ताल पै तमाल माल मालन पै । वृन्दावन वीथिन विहार वंशी वट पै । ।
छित पै छात पै छाजत छटान पै । ललित लतान पै श्री लाडली की लट पै । ।
कहे पद्माकर अखण्ड रास मण्डल पै । मण्डित उमण्डित श्री कालन्दी के तट पै । ।
कैसी छवि छाई आज सरद जुन्हाई । कैसी छवि छाई या कन्हाई के मुकुट पै । ।

(भावार्थ – श्री वृन्दावन की शरद रात्रि की शोभा का वर्णन करते हुए रसिक कवि पद्माकर कहते हैं कि ताल और तमाल वृक्षों की श्रेणियों पर, श्री वृन्दावन की सुन्दर विहार – पगडंडियों पर, निकुंज भवनों के छज्जों पर, सुन्दर लताओं पर, श्री लाडिली जी की गिरती हुई कुन्तलों पर, यहाँ तक कि सम्पूर्ण रास मंडल पर, शरद रात्रि की चाँदनी अतिशय सुन्दर ढंग से चमक रही है । और इस चाँदनी की सबसे सुन्दर छटा तो श्री कन्हैया के मुकुट से छिटक रही है)

इतने स्तरों को जब भक्त पार कर लेता है तब भगवान् ऐसी अमूल्य वस्तु उसे प्रदान करते हैं जो किसी के लिये भी प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है। यह ऐसे ही है जैसे १८वें अध्याय के ५४वें श्लोक में भगवान् ने अपने अमूल्य रत्नों की तिजोरी भक्त के सामने खोल दी हो और उसमें से जो बहुमूल्य रत्न है वह उसको प्रदान कर रहे हों। वह बहुमूल्त रत्न उनकी परा भक्ति है जो भगवान् स्वयं ऐसे भक्त को देते हैं। उस

भक्त से दूरी उनको असह्य हो जाती है। इस कारण उसको अपने से अपना बना लेते हैं।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।१८-५४।

इस श्लोक में श्रीभगवान् भक्त के विषय में कहते हैं कि उस योगी का चित्त सर्वत्र व सदा प्रसन्न रहता है। वह न किसी बात का शोक करता है और न किसी की आकांक्षा। कारण यह है कि न तो उसे किसी वस्तु से सुख की आशा होती है न किसी वस्तु के वियोग से उसे शोक होता है। वह सब में स्वयं अपने आप को ही देखता है। अत: कोई मित्र, वैरी, बन्धु, विरोधी उसके लिये नहीं रह जाता। ऐसे मनुष्य को भगवान् की परम भक्ति अर्थात् भगवान् की रागात्मिका भक्ति अथवा प्रेमा भक्ति प्राप्त होती है। उस प्रेम मन्दिर की ध्वजा गोपियाँ हैं, जिससे रसराज भगवान् श्रीकृष्ण व महाभावरूपा श्रीराधिका सेवित हैं। गोपियों में जड़ता की दृष्टि का सर्वथा त्याग हो जाता है। उनकी दृष्टि में केवल चिदानन्द स्वरुप श्रीकृष्ण हैं। उनके हृदय में श्रीकृष्ण को तृप्त करने वाला प्रेमामृत है। भगवान् श्रीकृष्ण की परम अन्तरंग लीला, निजस्वरूपभूता गोपिकाओं और आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा जी के साथ होने वाली भगवान् की दिव्यातिदिव्य रास क्रीड़ा है। 'रास' शब्द का मूल रस है और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं - 'रसो वै स:'। जिस दिव्य क्रीड़ा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में होकर अनन्त-अनन्त रस का समास्वादन करे, एक रस ही रस समूह के रूप में प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद-आस्वादक लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपन के रूप में क्रीड़ा करे - उसका नाम रास है। भगवान् की यह दिव्य लीला भगवान् के दिव्य धाम में दिव्य रूप से निरन्तर हुआ करती है और अधिकारी पुरुष रसस्वरूप भगवान् की इस रसमई लीला का आनन्द प्राप्त कर पाते हैं और स्वयं भी भगवान् की लीला में सम्मिलित होकर अपने को कृत-कृत्य कर पाते हैं। प्रीतिरसाावतार श्रीराधा बाबा ने अपने दलाल को श्रीभगवान के उस लीलामय धाम के रस व रंग में सराबोर कर दिया, इसमें कौन सी बड़ी बात है। उनके कक्ष का भावमय वातावरण इसका साक्षी है। तो आइये उसी रास रंग को हम सब अब गाये जाने वाले पदों से अनुभव करें व उसमें निमज्जन करें।

(हाँ–हाँ) रच्यौ रास रँग स्याम, सबहिन सुख दीनौ ।
मुरलि–धुनि करि प्रकास, खग–मृग सुनि रस उदास,
जुबतिन तजि गेह–बास, बनहिं गवन कीनौं । ।
मोहे सुर–असुर–नाग, मुनिजन–मन गये जाग,
सिव–सारद–नारदादि, चकित भये ग्यानी ।
अमरागन, अमर–नारि, आये लोकन बिसारि,
ओक लोक त्यागि कहत, धन्य–धन्य बानी । ।
थकित भयौ गति समीर, चंद्र भयौ अति अधीर,
तारागन लजित भये, मारग नहिं पावैं ।
उलटि जमुना बहति धार, बिपरित सबही बिचार,
सूरज प्रभु संग नारि कौतुक उपजावैं । ।

(भावार्थ - हे सखी! आओ रास रंग रचाएँ! आज श्री श्यामसुन्दर (ने रास रचना कर) सभी को सुख - वितरित किया है। वंशी की तान से सब ओर प्रकाश फैल रहा है, समस्त पशु-पक्षी रस विवश हो रहे हैं। सभी ब्रज युवतियों ने अपने घर को छोड़ (मुरली की टेर सुनकर) वन के लिए प्रस्थान कर लिया है। सभी सुर-असुर-नागगण मोहित हो रहे हैं, मुनियों के मन नव चेतनता की जागृति हुई है। शंकरजी, सरस्वतीजी, नारदजी एवं सभी ज्ञानी चकित होकर मुरली की धुन सुन रहे हैं। सभी देवता अपने-अपने लोकों को भूलकर मुक्त कंठ से धन्य-धन्य का उच्चारण कर रहे हैं। वायु का बहाव रुक गया, चंद्रमा (अपने शीतल स्वभाव के विपरीत) अधीर हो उठा, तारा समूह भी भ्रमित होकर अपना स्वाभाविक मार्ग भूल गया। (कहाँ तक कहूँ) श्री यमुनाजी की धारा भी उलटी बहने लगी। सूरदास जी कहते हैं कि प्रभु श्रीश्यामसुन्दर ब्रजगोपियों सहित इस प्रकार के विचित्र खेल कर रहे हैं कि सभी (देवता, असुर, प्रकृति इत्यादि) भ्रमित से हो रहे हैं।)

मण्डल रास विलास महारस, मण्डल श्रीवृषभानु दुलारी
मण्डित गोप संगीत भरी, उत राजत कोटिक गोप कुमारी
प्रीतम के मुख कंज पे सोभित, अनंदन अंग अनंग निवारी
ताल तरंगन रंग बढ्यो ऐसे राधिका माधव की बलिहारी

(भावार्थ- रास मण्डल में महान रस का संचार हो रहा है। एक ओर श्रीवृषभानु नन्दिनी सुशोभित -

हैं, तो दूसरी ओर करोड़ों गोपियाँ संगीत एवं नृत्य करते हुए शोभा पा रही हैं। प्रियतम श्री कृष्ण के मुख कमल पर ऐसा आनन्द छाया हुआ है कि कामदेव की शोभा उसके सामने फीकी पड़ जाती है। ताल एवं गीतालंकारों के रंग में भरे हुए श्री राधा-माधव की बलिहारी ।)

मेरी आखिन आगे बैठे रहो।
साँवरी सूरत मन में बसी है, चाहे कोई लाख कहो ।।
प्रीति की रीति अति ही कठिन है, प्रीत करी तो बोल सहो।
आनन्दघन पिय अतिहि रँगीले, पाँच कहे दस और कहो।।

(भावार्थ- हे श्यामसुन्दर आपसे विनती करती हूँ कि आप मेरे नयनों के समक्ष विराजित रहें। आपकी साँवली सलोनी सूरत मन में ऐसे बस गई है कि किसी के लाख कहने पर भी यह अब हद नहीं सकती। प्रेम की रीति अत्यन्त कठिन है, जो प्रेम करता है उसे कड़वे वचन सहन करने ही पड़ते हैं। मेरे प्रियतम इतने आनन्दमय व रसमय हैं कि उनके लिए पाँच क्या में दस उलहाने सहने को तैयार हूँ।)

नंदलाला बन्सी वाला । बसिया कैसी बजाई गईए रे
फिर बजाओ बांसुरी मैं वारी बंसी वारे जाते सुनत नींद नहीं रैन गिनत तारे
मोहि लई सब ब्रजनारी मैं वारी प्यारे सुन छैया, कन्हैया, मनभैया, हर जैया रे
सुनत बंसी सुधि–बुध बिसरी, लोक लाज कुल की सगरी सुन कान्हा मनमाना जगजाना पहचाना रे ।

(भावार्थ- हे नंदलाला! हे बंसीवाला! तुमने कैसी बंसी बजाई कि हम तुम्हारे वश में हो गए। मैं बलिहारी जाती हूँ, फिर वह वंशी बजाओ जिसकी तान सुनकर हमारी नींद उड़ जाती है और रात्रियाँ तारे गिनते-गिनते बीत जाती हैं। सुनो छलिया! हे कन्हैया! मनमोहन! अरे निष्ठुर! तूने सब ब्रजनारियों को मोहित कर लिया है। बंसी की तान सुनकर हम शरीर की सुध-बुध, लोक लाज सब भूल गई है।)

ऐसा कैसे हो सकता है कि इस मधुर एवं सौन्दर्यपूर्ण कार्यक्रम में गीता के बहुचर्चित श्लोक का अवलोकन न किया जाये। तो आइये १८वें अध्याय के ६६वें श्लोक का श्रवण करें

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।१८-६६।।

जिन भगवान् श्रीकृष्ण ने स्थान-स्थान पर धर्म की ही स्थापना करी है, यहाँ तक कि गीता जी के प्रथम श्लोक का प्रथम शब्द धर्म है। वे - स्वयं इस श्लोक में धर्म का परित्याग करने की बात कर रहे हैं। बहुत लोगों को यह युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। पर यहाँ पर एक विशेष बात है। यदि हम अपनी दृष्टि श्रीमद्भागवत महापुराण के रासपंचाध्यायी पर डालें तो ज्ञात होगा कि जब भगवान् की वंशी बजी तब गोपियाँ जो कार्य कर रहीं थीं उसे वहीं छोड़ दिया और चल पड़ी भगवान् के समीप। उन्होंने यह चिंता भी नहीं करी कि कार्य पूर्ण करके चलें। इसी कारण सन्त समुदाय बारम्बार यह चेतावनी देते हैं कि जब तक छोड़ने का भाव रहे तब तक कुछ भी नहीं छोड़ना चाहिये अर्थात् स्वतः छूट जाये। यही तथ्य ऊपर कहे हुये श्लोक में इंगित किया गया है। कर्म को निष्काम भाव पूर्वक करने से मनुष्य कर्म और कर्मफल से निवृत हो जाता है, परन्तु सकाम भाव से करने से वह कर्म बन्धनकारी हो जाता है। यही वह रहस्य है जो गोपियों के जीवन से परिलक्षित होता है। अत: इस श्लोक में परित्याग की बात कही गई है वह वास्तव में गोपी भाव को ही दर्शाती है। सब धर्मों से ऊपर उठ कर भगवान् मनुष्यों के लिये एक परम धर्म का उल्लेख करते हैं कि श्रीभगवान् की अनन्य भाव से शरण ग्रहण की जाये। जहाँ श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम है, वहाँ पाप ठहर नहीं सकता। इसलिये भगवान् सब पापों से मुक्त कराने की बात कहते हैं। अन्त में इसी श्लोक में कहते हैं कि 'तू शोक मत कर'। यह भगवान् की मनुष्य समुदाय से प्रीति भरी मनुहार है। अत: इस प्रांगण से जब हम चलें तो स्मरण रहे कि इन चार बातों का सदैव ध्यान रहे।

१ - जब तक कर्म छोड़ने का भाव है, तब तक कुछ न छोड़े। सहज स्वभाविक रूप से छूटने दे। इसीलिये डैडी इस मुहावरे का यदा-कदा प्रयोग करते थे - 'न छोड़ो न लपको' ।

२ - भगवान् की अनन्य भाव से शरण ली जाये।

३ - श्रीभगवान् में अपनी प्रीति बढ़ायें तो पाप ठहर नहीं सकेगा।

४ - किसी भी स्थिति में मानव शोक ना करे। वास्तव में शोक करना तो भगवान् से विश्वासघात करना है। यही आप सब के प्रति डैडी का विदाई संदेश है।

जय जय राधे श्याम।